प्रसंगश: आलोक मेहता

खतरा दाम या दलाली बताने का

समान नागरिक संहिता के पक्षधर सरकारी गोपनीयता कानून में संशोधन क्यों नहीं करते?

रक्षा सौदों पर वर्षों से हंगामा करते रहे भारतीय नेता रक्षा मंत्री जॉर्ज फर्नांडीस के इस प्रस्ताव पर सहमत क्यों नहीं हो जाते कि पहले विश्व युद्ध के समय परतंत्र भारत में बने नियम-कानून में थोड़ा संशोधन हो जाने पर 1962 से 2002 तक के बीच हथियारों की खरीदी में हुई कथित अनियमितताओं के जांच प्रतिवेदन संसद के समक्ष रखे जा सकते हैं? हथियारों की संख्या, उन्हें रखे जाने वाले स्थान, संकट के समय तैनाती के प्रकार, रक्षा ठिकानों के नक्शे इत्यादि की जानकारी सार्वजनिक करने से भारत की सुरक्षा को खतरा पैदा हो सकता है। लेकिन दाम या दलाली का हिसाब-किताब पूरी पारदर्शिता के साथ संसद और जनता के सामने आने पर सुरक्षा को खतरा कैसे पैदा हो सकता है? विश्व की हथियार बनाने वाली कंपनियां, उनके एजेंट, खरीदी करने-कराने वाले विशेषज्ञ क्या अपने भाव-ताव के कागज तिजोरियों में बंद रखते हैं? ऐसे कितने सौदागर हैं, जो केवल भारत को ही अपने हथियार बेचते हैं? असलियत तो यह है कि वे हर छोटे-बड़े देश के साथ सौदे के लिए निरंतर अभियान चलाते रहते हैं। फिर भारत द्वारा पिछले वर्षों के दौरान किए गए रक्षा सौदों पर भारत सरकार के पूर्व सतर्कता आयुक्त एन. विट्ठल की रिपोर्ट के प्रमुख अंश तो भारतीय सामरिक शोध और अध्ययन संस्थान के आधिकारिक प्रपत्रों में प्रकाशित हो चुके हैं। मुख्य सतर्कता आयुक्त ने अपनी रिपोर्ट में माना था कि राजनेताओं और अधिकारियों का गठजोड़ राष्ट्रीय सुरक्षा हितों को ताक पर रखकर हथियारों की खरीदी में गड़बड़ करता रहा है। मुख्य सतर्कता आयुक्त ने अपनी रिपोर्ट में एक पूर्व सेनाध्यक्ष के बेटे की भूमिका पर भी सवाल उठाए थे। उन्होंने सबसे मजेदार तथ्य यह पेश किया था कि कुछ हथियारों की खरीदी के लिए मूल्य निर्धारित करने वाली समिति ने प्रस्तावित एक सौदे की राशि 140 करोड़ से बढ़ाकर 149 करोड़ कर दी। बेचने वाला माल का दाम कम मांग रहा था लेकिन खरीदने वाले 'मेहरबान' अफसरों ने अधिक कीमत देने का फैसला किया। इसी तरह जिन जहाजों की मरम्मत भारत शिपयार्ड में आसानी से हो सकती थी, उन्हें रूस भेजा गया। सतर्कता आयुक्त के अनुसार एक विमान को परीक्षण उड़ान से पहले ही उसकी खरीदी के लिए 50 करोड़ डॉलर का एडवांस दे दिया गया। नौ सेना के भंडारों में 35,000 से 40,000 करोड़ रुपये मूल्य के कल-पुर्जे जंग खाते रहे हैं। ऐसी अनियमितताओं पर दोषी अधिकारियों की जिम्मेदारी तय करने तथा दंड दिए जाने पर आपत्ति क्यों होनी चाहिए?

वास्तव में आड़ सुरक्षा हितों की ली जाती है लेकिन स्वार्थ जुड़े होते हैं नेताओं और अफसरों के। लोक लेखा समिति को मुख्य सतर्कता आयुक्त की रिपोर्ट देने या उसका ब्यौरा संसद के समक्ष रखने पर संसद में दो सप्ताह तक हंगामा होता रहा। एक मोटे अनुमान के अनुसार इस हंगामे से 80 करोड़ रुपये की बर्बादी हुई। इतनी बड़ी राशि का उपयोग हथियार खरीदने में न सही, गरीब बच्चों के लिए स्कूल और अस्पताल बनवाने के लिए हो जाता तो अगले 50 वर्षों के लिए भारत की रक्षा करने वाले अच्छे प्रहरी ही तैयार होते। तथ्यों को लेकर सभी पक्षों के नेता डरे रहते हैं। इस चर्चित रिपोर्ट में जिन पांच सौदों का जिक्र है, उनमें से तीन कांग्रेस या संयुक्त मोर्चे की सरकारों के कार्यकाल (1993 से 1997 के मध्य) में हुए थे। सवाल यह नहीं होना चाहिए कि गड़बड़ी किस राज में हुई। मुद्दा यह होना चाहिए कि अनियमितताओं को कितना पकड़ा गया और उस पर क्या कार्रवाई हुई? हर बड़ा नेता मूंछ पर ताव देते हुए दावा करता है कि उसने कोई दलाली नहीं ली, कोई घोटाला नहीं किया। आधार यह होता है कि खरीदी करने वाले अधिकारी तो कोई और थे। बहुत बड़े अंतर्राष्ट्रीय समझौतों पर मंत्री हस्ताक्षर करते हैं, अन्यथा नियमित खरीदी का काम तो अफसर ही करते हैं। अफसर क्या मंत्री की हरी झंडी मिले बिना बड़ी खरीदी कर सकते हैं? इसलिए घालमेल की गुंजाइश बनी रहती है। ऐसी स्थिति में हथियारों के संवेदनशील तथ्यों को गोपनीय रखते हुए उनके वित्तीय पहलुओं का विवरण अन्य प्रजातांत्रिक देशों की तरह संसदीय समिति के समक्ष और फिर पूरे देश के सामने क्यों नहीं रखा जा सकता? आरक्षण, मंदिर, समान नागरिक संहिता इत्यादि के लिए संविधान तक बदलने के पक्षधर राजनेता ब्रिटिश राज में बने सरकारी गोपनीयता कानून को बदलने के लिए संसद में संशोधन विधेयक क्यों नहीं ला सकते? इस मुद्दे पर राजनीतिक सर्वानुमति क्यों नहीं बनाई जा सकती। ऐसे काले कानूनों के जनक ब्रिटेन में तो हथियारों की खरीदी-बिक्री के मामलों पर संसद खुली बहस करती है और घोटालों का भंडाफोड़ करनेवाले पत्रकारों को जेल भेजने की धमकियां भी नहीं देती। केवल तीन सप्ताह पहले ही ब्रिटेन के प्रमुख अखबार गार्डियन ने यह रहस्योद्घाटन किया कि एक बड़ी ब्रिटिश कंपनी ने दक्षिण अफ्रीका को हथियार बेचने के लिए लाखों पौंड का कमीशन चुपचाप दे दिया। फिर खोजबीन करने पर ब्रिटिश सरकार ने 16 करोड़ पौंड की दलाली दिए जाने की पुष्टि भी कर दी। यह बात अलग है कि कमीशन खाने वाले नेता का नाम ब्रिटिश कंपनी या सरकार ने नहीं बताया। यूरोपीय देश तो इस बात से भी चिंतित हैं कि हथियारों के धंधे में शैतान किस्म के कुछ दलाल भी सक्रिय हो गए हैं। उन पर नियंत्रण के लिए नए नियम-कानून बनाने पर विचार किया जा रहा है। गैर कानूनी ढंग से हथियारों की खरीदी-बिक्री पर संयुक्त राष्ट्र संगठन भी चिंतित रहा है। इसमें कोई शक नहीं कि अंतर्राष्ट्रीय आतंकवादी गतिविधियों को ध्यान में रखकर हथियारों तथा सेना संबंधी महत्वपूर्ण संवेदनशील सूचनाओं को गोपनीय रखने के लिए सरकार हर संभव कदम उठाए। लेकिन सुरक्षा संबंधी सूचनाओं को कुख्यात सौदागरों से बचाने तथा खरीदी के वित्तीय तथ्यों को अधिकाधिक पारदर्शी बनाए जाने पर किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए। कुछ वर्ष पहले ही राज्य सभा के 40 सांसदों ने उप प्रधानमंत्री लालकृष्ण आडवाणी को पत्र लिखकर सरकारी गोपनीयता अधिनियम 1923 को संशोधित करने का आग्रह किया था। भारतीय प्रेस परिषद भी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए आवश्यक प्रावधानों को रखते हुए अधिनियम के सेक्शन-6 में संशोधन की सिफारिश की थी। अमेरिका में इस मांग पर जोर दिया जाता रहा है कि गोपनीयता के दायरे में आने वाली जिन क्लासीफाइड सूचनाओं से सुरक्षा को खतरा उत्पन्न नहीं होता, उनके प्रकाशन पर अंकुश नहीं लगाया जाना चाहिए। अमेरिका में सूचना की स्वतंत्रता और इसके अधिकार को सर्वोपरि माना जाता रहा है। भारत में सूचना का अधिकार दिए जाने का सिलसिला कुछ राज्यों में शुरू हुआ है। लेकिन यह खानापूर्ति मात्र है। इस समय सत्ता में बैठे कई राष्ट्रीय नेता वर्षों तक घोटालों का पर्दाफाश करने तथा अपराधियों को दंडित करने की हिमायत करते रहे हैं। इसलिए क्या यह सुनहरा अवसर नहीं है कि सुरक्षा मामलों की पारदर्शिता के लिए एक नई पहल हो तथा आवश्यकतानुसार काले कानूनों में संशोधन के लिए व्यापक राजनीतिक सर्वानुमति बनाई जाए? ●

हथियारों के संवेदनशील तथ्यों को गोपनीय रखते हुए उनके वित्तीय पहलुओं का विवरण अन्य प्रजातांत्रिक देशों की तरह संसदीय समिति के समक्ष और फिर पूरे देश के सामने क्यों नहीं रखा जा सकता?